4

राह बनाते शिक्षक

रश्मि पालीवाल*

शिक्षा संबंधी नीतियों, योजनाओं तथा सामग्री की सार्थकता काफ़ी हद तक शिक्षक के व्यवहार पर निर्भर है। शिक्षक का आत्मीय व्यवहार, बच्चे के प्रति उसकी समझ, बच्चे की विद्यालय के प्रति रुचि जगाने में अहम् भूमिका निभाता है। एकलव्य, होशंगाबाद और ब्लॉक संसाधन केंद्र, बाबई, ज़िला होशंगाबाद द्वारा अप्रैल 2009 में एक शिक्षक सम्मेलन आयोजित किया गया था। सम्मेलन में दिए गए व्याख्यान/अनुभव एकलव्य द्वारा प्रकाशित 'राह बनाते शिक्षक' पुस्तिका में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत है उसी पुस्तिका से कुछ अंश।

आज शिक्षा नीति की चर्चाओं में अगर सबसे ज़्यादा ज़ोर किसी बात पर दिया जा रहा है तो वह है बच्चों को भय रहित माहौल देना और परीक्षा के तनाव से मुक्त करना। हाल ही में संसद में पारित किए गए बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार विधेयक में भी यह बात बच्चों के मौलिक अधिकार के रूप में स्वीकार की गई है। कानून बनाना एक बात ठहरी और उसे असलियत का जामा पहनाना एक अलग बात। भय और परीक्षा रहित शिक्षा की संभावना तभी बन सकती है जब शिक्षक समुदाय में इसके लिए प्रतिबद्धता हो। आम मान्यता है कि शिक्षक बच्चों को डरा कर और मार कर ही शिक्षा देते हैं। यही एक शिक्षक की छवि है। क्या ऐसे शिक्षक नहीं हैं जो कभी बच्चों की तरफ़ से सोचकर देखते हों? जो यह समझने की कोशिश करते हों कि बच्चे जैसा व्यवहार करते हैं उसके पीछे आखिर बात क्या हो सकती है?

आइए, हम कुछ ऐसे शिक्षकों से मिलें जो कुछ हट के सोचते हैं और करते भी हैं।

मिटाइए फेल होने का डर, तो बच्चे स्कूल जाएँगे

मैंने अपने स्कूल के साथी शिक्षकों के साथ मिलकर बच्चों की उपस्थिति बढ़ाने का प्रयास

* एकलव्य के होशंगाबाद केंद्र में कार्यरत

**लेख 'शैक्षणिक पत्रिका' अंक-9 (नवंबर, 2009) से साभार

किया। सबसे पहले अभिभावकों से संपर्क स्थापित किया जिससे कुछ दिन बाद वही स्थिति पुनः निर्मित हो गई। तब फिर से इस विषय में सोचा। इस बार शाला को आकर्षक टी.एल.एम. सामग्री से सजाया गया, बच्चों को निःशुल्क कॉपी-पेन प्रदान किए गए, बच्चों की उपस्थिति को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष पुरस्कार घोषित किए गए, प्रत्येक बच्चे को पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ने को दी गई, परीक्षा के भय को दूर किया गया, बालमेलों का आयोजन किया गया और बच्चों को स्वयं करके सीखने का मौका दिया गया।

उपरोक्त प्रयासों के बाद मैंने पाया कि बच्चों की उपस्थिति पहले की अपेक्षा बढ़ी तथा बच्चे नियमित स्कूल आने लगे। पर दुख इस बात का रहा कि परीक्षा के समय अधिकांश बच्चे शाला से नदारद रहे। हमने बच्चों से कहा था कि चाहे तुम्हें कुछ आता हो या नहीं, तुम परीक्षा में ज़रूर आना। तुम्हें कोई भी सवाल नहीं आता हो तो कोई बात नहीं- उत्तर पुस्तिका में अपना नाम लिख देना, हम तुम्हें पास कर देंगे। इस तरह की बात करने के बावजूद बच्चे परीक्षा देने नहीं आए। हम बहुत निराश हुए। हमने विचार किया कि बच्चों के न आने का क्या कारण रहा होगा? शायद उन्हें हमारी बात पर भरोसा नहीं हुआ था। उनके मन में परीक्षा का डर सालों से बैठा था और हम उसे खत्म नहीं कर पाए। इस विषय में रणनीति नवीन शिक्षा सत्र में बनाई जा रही है कि बच्चे परीक्षा के समय भी उपस्थित रहें।

रोहित शुक्ला,
शासकीय प्राथमिक शाला, विकास खंड बाबई, होशंगाबाद

शिक्षा में क्रांति आनी चाहिए

क्रांति शब्द यहाँ थोड़ा-सा अटपटा लग सकता है लेकिन क्रांति से मेरा तात्पर्य है पूर्ण परिवर्तन अर्थात् जो है वो नहीं होना चाहिए और जो नहीं है वह घटित होना चाहिए। राजनैतिक क्रांति के परिणाम स्वरूप राजतंत्र खत्म हुआ और लोकतंत्र का जन्म हुआ लेकिन शिक्षा में अभी तक कोई क्रांति नहीं हुई जो यह कह सके कि एक व्यक्ति द्वारा बनाए गए परीक्षा पेपर के आधार पर हज़ारों बालकों के जीवन का निर्धारण न किया जाए। बल्कि प्रत्येक बच्चे को अपनी स्वतंत्रता अनुसार जीवन की शिक्षा दी जाए। जहाँ शिक्षक एक आदेश देने वाला नहीं वरन् एक सहयोगी हो, उत्प्रेरक हो और बच्चे को अपनी योग्यता के अनुसार प्रदर्शन का मंच प्रदान कर सके।

ऐसी क्रांति की आवश्यकता है जहाँ विद्यार्थी के लिए फ़ेल और पास की सीमाएँ ही न हों। जहाँ सिर्फ़ कुछ हो, तो विद्यालय और

विद्यार्थी, जहाँ विद्यार्थी अपने जीवन का एक-चौथाई समय सार्थकतापूर्ण रूप से व्यतीत कर सके।

हमारे स्कूल की छठवीं कक्षा में 20 बच्चों ने दाखिला लिया। शुरू में सबको एक ही विधि से पढ़ाया गया-उस पद्धति से जो हमें अच्छी लगी लेकिन इस बात पर विचार नहीं किया कि बच्चे को क्या आता है। प्रत्येक बच्चे को उसकी आवश्यकता के अनुसार सीखने का स्तर उपलब्ध कराया जाए, ऐसा नहीं सोचा गया। शिक्षा बच्चे की आंतरिक क्षमताओं को बाहर प्रकट करने का माध्यम है। स्वामी विवेकानंद एवं गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर के विचार भी इसी को लेकर थे कि बच्चे को उसकी प्रकृति और स्तर के अनुसार शिक्षा दी जाए।

मेरे विद्यालय की छठवीं कक्षा जिसे मैं पढ़ाता था, में 2-3 बच्चियों को छोड़कर किसी बच्चे का अँग्रेज़ी से बिल्कुल भी परिचय नहीं था। मैंने जनवरी-फरवरी आते-आते केवल दो-तीन अध्याय पढ़ाए। मुझसे पूछा गया, ''ये आप किस गति से चल रहे हैं?'' मैंने कहा, ''हम पूरा कोर्स पढ़ा दें और एक या दो बच्चे सीख पाएँ, ये हमारे लिए उपयुक्त स्तर नहीं है। उन 20 बच्चों में से यदि दो बच्चे पहले से पाठ पढ़ पाते हैं तो उन्हें हमने नहीं सिखाया। वे तो अपने हिसाब से सीख गए। कोर्स पूरा करता रहूँगा तो बाकी 18 को भी नहीं सिखा पाऊँगा।'' फरवरी में जब मैंने बच्चियों से किताब पढ़वाना शुरू किया तो वे अँग्रेज़ी के शब्द जोड़-जोड़ कर पढ़ना सीख गईं। उनका पास होना या फेल होना मेरे हाथ में था, मैंने उन सबको पास कर दिया। मैं उन बच्चियों की प्रतिक्रिया जानना चाहता था। वे आपस में बात कर रही थीं। कि हम सातवीं में आ गए हैं, अब हम थोड़ी और मेहनत करेंगे।

बच्चे शिक्षक से पढ़ना नहीं चाहते, उनका प्रोत्साहन चाहते हैं। शिक्षक को हर स्तर पर बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहिए लेकिन शिक्षक बच्चों को वो पढ़ाता है जो उसे आता है, वह सिखाता है जो खुद को आता है। शिक्षक यह जानने की कोशिश नहीं करता कि तुझे (बच्चे को) क्या सीखना है, और जो तुझे सीखना है उसके लिए मैं क्या प्रयास करूँ? बच्चों को फेल या पास करने वाले हम कौन?

मैं अपने छात्रों पर भरोसा करता हूँ और उन्हें स्वतंत्रता और ज़िम्मेदारी देता हूँ। उदाहरण के लिए मेरे स्कूल में बच्चों के लिए खेल सामग्री आई। व्यवस्था के अनुसार मुझे सामान कमरे में रखकर ताला लगा देना था परंतु मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने बच्चों को कहा जब खेलना हो तो सामान ले जाना और वापिस यहीं रख देना। कुछ दिनों बाद सामान की गिनती की गई तो कुछ सामान कम निकला। मैंने बच्चों से कहा, ''तुम्हारे विश्वास पर कमरे में ताला नहीं डाला और अब ये सामान कम निकला''। कुछ दिन बाद देखा कि जो सामान चला गया था वह वापिस आ गया अर्थात् बच्चों को उनकी ज़िम्मेदारी का एहसास दिलाया जा सकता है।

''अपना गम लेके कहीं और न जाया जाए,
घर में बिखरी हुई चीज़ों को सजाया जाए,
घर से मस्ज़िद है बहुत दूर चलो यूँ कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को हँसाया जाए''

-निदा फाज़ली

यदि शिक्षा में क्रांति हुई तो शिक्षक का पद सभी पदों से ऊँचा होगा।

ब्रजेश कुमार त्रिवेदी,
शा.क.मा. शाला, सांगाखेड़ा खुर्द, विकास खंड बाबई, होशंगाबाद

घर की मजबूरियों को लाँघ सकता है स्कूल

ईश्वर ने सब बच्चों को बराबर बनाया है। बच्चा 6 साल की उम्र में स्कूल आता है। अब यह हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम उनके अभिभावक भी बनें और शिक्षक भी। उन्हें ज़ोर ज़बरदस्ती कुछ नहीं सिखाया जा सकता, उन्हें स्नेह से पास बिठाकर सिखाना चाहिए। बच्चों को परीक्षाओं में पास कर देना चाहिए अन्यथा यदि वे फेल होकर पिछली कक्षा में अपने से छोटी उम्र के बच्चों के साथ रहे तो उनमें हीन भावना पनप सकती है और उनकी ग्रहण करने की क्षमता कम होती जाएगी।

मैंने अपने स्कूल में गरीब परिवार की लड़कियों को पढ़ना सिखाने में कामयाबी हासिल की है, इस बात की मुझे बहुत खुशी है। मेरी शाला में कक्षा 6 में वर्ष 2008-2009 में 163 बालिकाएँ दर्ज थी। इनमें से 60 बालिकाओं को पढ़ना नहीं आता था। हम इन्हें बाकी सबके साथ कक्षा में बिठाते थे तो ये पीछे ही बैठी रहती थीं। पाठ्यपुस्तकें अपने हिसाब से आगे बढ़ती रहतीं और ये बालिकाएँ पीछे रह जातीं। इस वजह से उनमें स्कूल के प्रति अरुचि पनपती गई।

गरीब परिवार की इन बालिकाओं का नियमित स्कूल आना अपने आप में एक बहुत बड़ी चुनौती थी। छोटे-से आर्थिक लाभ के लिए वे स्कूल से विमुख होने को मजबूर होती थीं। एक बच्ची आधी छुट्टी के बाद हमेशा चली जाती थी क्योंकि उसकी भाभी दो रुपए का प्रलोभन देकर उसे सब्ज़ी तोड़ने ले जाती थी। ऐसा नहीं कि उस बच्ची का दिमाग कमज़ोर था, वह बहुत समझदार थी।

कीर जाति की एक बच्ची अपने छोटे भाई को सँभालने के लिए अक्सर कई दिनों तक घर पर रुकी रहती थी। उसके परिवार की यह मान्यता थी कि बच्चा माँ के पास नहीं रहेगा, उसे बड़ी बेटी सँभालेगी। परिवार में अन्य बड़े लोग तो थे पर वे बच्चे को सँभालने का दायित्व बड़ी लड़की पर ही डालते थे।

कई बच्चियाँ परात भर आटे की रोटियाँ बनाकर स्कूल आती थीं या स्कूल से जाकर बनाती थीं। उनकी कहानियाँ सुनकर या जानकर हम दंग रह जाते थे। हमने तय किया कि कक्षा-6 की 60 बच्चियाँ जो पढ़ नहीं पा रही हैं, उन्हें अलग बिठाकर पढ़ना सिखाएँगे। उसी समय हमारे स्कूल में तीन अतिथि शिक्षिकाएँ पदस्थ हुईं। प्रत्येक के ज़िम्मे 20-20 बच्चियों को कर दिया। हमने बालिका शिक्षा, मीना मंच आदि योजनाओं में मिली कहानी की किताबें उनके सामने खोल कर रख दीं। कहानी की इन पुस्तकों को कमरे में टाँगने की भी व्यवस्था कर दी। कहानी की किताबों की सहायता से अतिथि शिक्षिकाओं ने बालिकाओं को पढ़ना सिखाने की कोशिश की। ये लड़कियाँ कक्षा में किताबों को देखतीं, पढ़ने की कोशिश करतीं और घर भी ले जातीं। कुछ किताबें

वापिस आईं और कुछ किताबें वापिस नहीं भी आईं।

छह–सात महीने लगे पर 60 में से 44 बच्चियाँ पढ़ना सीख गईं। 16 बच्चियाँ अभी भी नहीं सीख पाईं। उनमें से एक बच्ची के पिता बुरी तरह से नशा करते हैं। एक और बच्ची बहुत आक्रामक है, लोगों को नोचती–खसोटती है। वह अपनी दादी के लिए लाया गया तंबाकू खाती है। उसकी आदत छुड़ाने की बहुत कोशिश की पर हम असफल रहे।

हमें इस साल भी अपने प्रयास जारी रखने हैं। कक्षा–6 में नए दाखिले होते ही हम कक्षा–7 की सक्षम बालिकाओं की मदद से बेस–लाईन टेस्ट करेंगे और जिन बच्चों को अलग से सहायता की ज़रूरत है उनकी व्यवस्था करेंगे। हमने एक नोटिस छपवाया है जिसे हम अनियमित छात्रों के घर भिजवाते हैं। इससे घर के लोगों को लगता है कि हमारे बच्चे पर कोई ध्यान रखने की कोशिश करता है। अगर हम तीन साल तक यह प्रयास जारी रख सके तो शासकीय माध्यमिक शाला का स्तर किसी अच्छे प्राइवेट स्कूल जैसा हो जाएगा।

वर्षा सोनी,
कन्या मा. शाला. बाबई, होशंगाबाद

❑❑❑